गोस्वामी तुलसीदास विरचित

पार्वती-मंगल

सटीक



पण्डित वामदेव शर्मा

पार्वती-मंगल

सटीक

पण्डित वामदेव शर्मा



प्रकाशक

रामनरायन लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

१९२८

प्रथम संस्करण १०००]

[मूल्य

परिचय

गोस्वामी तुलसीदास जी के लेखनी द्वारा प्रवाहित साहित्य सागर में अनेक रत्न भरे पड़े हैं उन्हीं रत्नों में से यह भी एक है, इसमें पार्वती जन्म, पार्वती की तपस्या तथा शिव पार्वती सम्वाद, शिव बरात, शिव विवाह का वर्णन है। इसकी रचना सम्वत् १६४३ में हुई है। इसकी भाषा अवधी है। इसमें अद्भुत, भयानक और हास्यरस की अपूर्व छटा बहुत ही सुन्दर तथा स्वच्छ रूप से दर्शाया गया है। इसमें व्याज स्तुति तथा उत्प्रेक्षा अलंकार भी बहुत ही सुन्दर हैं। वटुक और पार्वती सम्वाद में श्लिष्ट शब्दों की भी निराली ही छटा है।

पौष शुक्र ११
सम्वत् १९८४ विक्रमी

वामदेव

श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः

पार्वती-मंगल

मंगल छन्द

विनइ गुरुहि, गुनिगनहि, गिरहि, गननाथहि ।
हृदय आनि सियराम धरे धनु भाथहि ॥ १ ॥

गुरु, गुनियों, सरस्वती, गणेश जी का वंदना कर तथा श्रीसीता जी और धनुष तथा तरकस धारण करने वाले श्रीरामचन्द्र जी को हृदय में लाकर, ॥ १ ॥

गावउँ, गौरि—गिरीस—विवाह सुहावन ।
पापनसावन—पावन—मुनि-मन—भावन ॥ २ ॥

पाप के नष्ट करने वाला पवित्र, मुनियों के मन के भावने तथा सुहावन शिव पार्वती के विवाह को गाता हूँ ॥ २ ॥

कबितरीति नहिं जानउँ, कबि न कहावउँ ।
संकर—चरित—सुसरित मनहिं अन्हवाउँ ॥ ३ ॥

मैं (तुलसीदास जी) कविता की रीति नहीं जानता, न कवि ही कहलाता हूँ। शिव जी के चरित्र रूपी सुन्दर सरोवर में मन को नहवाता हूँ ॥ ३ ॥

पर अपवाद-विवाद-विदूषित बानिहि ।
पावनि करउँ सो गाइ भवेस-भवानिहि ॥ ४ ॥

दूसरे की निन्दा में दूषित अपनी वाणि को संसार के ईश शिव जी और भवानी पार्वती जी के चरित्र को गा कर पवित्र करता हूँ ॥ ४ ॥

जय संवत फागुन, सुदि पाँचै गुरुदिन ।
अस्विनी विरचेउँ मंगल, सुनि सुख छिनु छिनु ॥ ५ ॥

जय नामक संम्वत्* में फागुन सुदी, तिथि पञ्चमी, दिन बृहस्पति, आश्विनी नक्षत्र में इस पार्वती मङ्गल की रचना की। जिसको सुनने से प्रत्येक क्षण में सुख प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

गुननिधान हिमवान धरनिधर धुरधनि।
मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि ॥ ६ ॥

गुणों के भण्डार हिमवान हैं, पर्वतों में निश्चय करके धन्य हैं। उनकी स्त्री मैना तीनों लोकों में स्त्रियों में श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

कहहु सुकृत केहि भाँति सराहिय-तिन्ह कर।
लीन्ह जाइ जगजननि जनम जिन्ह के घर ॥ ७ ॥

कहो तो, उनके (हिवमान मैना के) सुकृत (पुण्य) का सराहना किस प्रकार किया जा सकता है, जिनके घर में जगज्जननि पार्वती जी ने जन्म लिया ॥ ७ ॥

मंगलखानि भवानि प्रगट जब तें भइ।
तब तें ऋधि सिधि संपति गिरि गृह नित नइ ॥ ८ ॥

जब से मङ्गल के भण्डार पार्वती जी प्रकट हुईं तब से हिमवान के घर में नित्य खाने पीने की सामग्री सिद्धि सम्पतियाँ नयी नयी होती हैं ॥ ८ ॥

नित नव सकल कल्यान मंगल मोदमय मुनि मानही।
ब्रह्मादि सुर नर नाग अति अनुराग भाग बखानहीं ॥
पितु मातु प्रिय परिवार हरषहिं निरखि पालहिं लालहीं।
सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंद्रभूषन भालहीं ॥ ९ ॥

नित्य ही सब कल्याण मङ्गल होते हैं, मुनियों के मन आनन्दमय हैं, ब्रह्मादि देवता, मनुष्य, नाग अति प्रेम से भाग्य की सराहना करते हैं। पिता माता प्रियजन पार्वती जी को देख कर प्रसन्न होते हैं और लाड़ प्यार करते हैं। पार्वती जी ऐसे बढ़ रही हैं जैसे शिव जी के ललाट के चन्द्रमा की चन्द्रिका बढ़ती है ॥ ९ ॥

कुँवरि सयानि बिलोकि मातु पितु सोचहिं।
गिरिजा-जोग जुरिहि बर अनुदिन लोचहिं ॥ १० ॥

---

* पण्डित सुधाकर जी की गणनानुसार यह सम्वत् १६४३ सम्वत् में पड़ा था।

कुमारी पार्वती को सयानी होते देख माता पिता (उनके विवाह की) चिन्ता करते हैं। गिरिजा योग्य वर मिले इसी बात की प्रति दिन वे अभिलाषा रखते हैं ॥ १०॥

एक समय हिमवान भवन नारद गये।
गिरिवर मैना मुदित मुनिहि पूजत भये ॥ ११ ॥

एक समय नारद मुनि हिमवान के घर गये। हिमवान और मैना प्रसन्न मन हो नारद मुनि की पूजा करने लगे ॥ ११ ॥

उमहि बोलि ऋषिपगन मातु मेलति भइ।
मुनिमन कीन्ह प्रनाम, बचन आसिष दइ ॥ १२ ॥

माता ने मैना उमा को बुला कर मुनि नारद जी के चरणों पर डाल दिया। मुनि ने (पार्वती को जगज्जननि जान कर) मन में प्रणाम किया और वचन द्वारा (प्रकाश रूप से) आशीर्वाद दिया ॥ १२ ॥

कुँवरि लागि पितु काँध ठाढ़ि भइ सोहइ।
रूप न जाइ बखानि, जान जोइ जोहइ ॥ १३ ॥

कुमारि पार्वती जी पिता के कँधों से लगी हुई शोभायमान हो रही हैं। उनके रूप का वर्णन नहीं हो सकता, उस रूप को तो वही जान सकता है, जिसने देखा है ॥ १३ ॥

अति सनेह सतिभाय पायँ परि पुनि पुनि।
कह मैना मृदु बचन सुनिय बिनती, मुनि ॥ १४ ॥

अत्यन्त स्नेह तथा सहज स्वभाव से मैना बार बार मुनि के चरणों पर पड़ीं और मधुर वचन बोलीं—हे मुनि ! मेरी विनती सुनिये ॥ १४ ॥

तुम त्रिभुवन तिहुँकाल बिचारबिसारद।
पार्वती—अनुरूप कहिय वर, नारद ॥ १५ ॥

तुम तीनों लोक तथा तीनों काल के ज्ञान रखने में पण्डित हो, अर्थात् तुम ज्ञानी हो पार्वती के अनुकूल वर, हे नारद जी ! कहो ॥ १५ ॥

मुनि कह चौदह भुवन फिरउँ जग जहँ जहँ।
गिरिवर सुनिय सरहना राउरि तहँ तहँ ॥ १६ ॥

नारद मुनि बोले हे–पर्वत श्रेष्ठ! सुनिये, चौदहों लोकों* में जहाँ जहाँ मैं गया वहीं वहीं आपकी बड़ाई हो रही है ॥ १६ ॥

भूरि भाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिंन।
कछु न अगम, सब सुगम, भयो विधि दाहिन ॥ १७ ॥

आपके समान बड़भागी कहीं कोई नहीं है, आपके लिए कुछ भी अगम (अप्राप्त) नहीं, सभी आपको सुलभता से प्राप्त है, ब्रह्मा ही आपके अनुकूल हुआ है ॥ १७ ॥

दाहिन भये, बिधि सुगम सब, सुनि तजहु चित चिंता नई।
बर प्रथम बिरवा बिरंचि बिरचो मंगला मंगल मई ॥
बिधिलोक चरचा चलति राउरि चतुर चतुरानन कही।
हिमवान कन्या जोग बर बाउर बिबुधि बंदित सही ॥ १८ ॥

ब्रह्मा आपके अनुकूल है, आपके लिए सब सुगम है, यह सुन कर आप अपनी नयी चिंता (पार्वती योग्य वर की) छोड़ दें। ब्रह्मा ने वर रूपी वृक्ष का बिरवा पहले ही से लगा दिया है, क्योंकि पार्वती को मंगलमयी बनाया है। ब्रह्मलोक में आपकी चर्चा चलते समय ब्रह्मा ने कहा कि हिमवान के कन्या योग्य वर बावला है, पर वह देवताओं से पूज्य है, यह बात निश्चित है ॥ १८ ॥

मोरेहु मन अस आव मिलिहि वर बाउर।
लखि नारद-नारदी उमहिं सुख भा उर ॥ १९ ॥

मेरे मन में भी यही बात आती है कि, पार्वती को बौरहा वर मिलेगा। नारद की नारदी (सत्य भी कहना और झगड़ा भी लगा देना) सुन कर उमा के हृदय में सुख प्राप्त हुआ। सुख इसलिए प्राप्त हुआ कि पार्वती जी जिसको चाहती हैं वही वर शिव जी मिलेंगे ॥ १९ ॥

सुनि सहमे परि पाईं कहत भये दंपति।
गिरिजहि लागि हमार जिवन सुख संपति ॥ २० ॥

नादर मुनि का वचन सुन कर (हिमवान और मैना) डर गये। वे नारद के पैर पड़े और कहने लगे–गिरिजा ही के लिए हमारा जीवन, सुख और सम्पत्ति है ॥ २० ॥

* चौदह लोक ये हैं–(सात ऊपर के) भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य (नीचे के सात) अतल, सुतल, वितप, गभस्तिमत, महातल, रसातल, पाताल।

नाथ कहिय सोइ जतन मिटइ जेहि दूषनु ।
दोष दलनु मुनि कहेउ बाल बिधुभूषनु ॥ २१ ॥

हे नाथ ! वह उपाय बताइये, जिससे यह दोष दूर हो अर्थात् पार्वती को बौरहा वर न मिले। नारद मुनि बोले कि, इस दोष को दूर करने वाले द्वितीया के चन्द्रमा का भूषण धारण करने वाले शिव जी हैं अर्थात् यह दोष शिव जी ही दूर करेंगे ॥ २१ ॥

अवसि होइ सिधि, साहस फलै सुसाधन ।
कोटि कल्पतरु सरिस संभु-अवराधन ॥ २२ ॥

शिव जी की आराधना करोड़ों कल्पवृक्ष के समान है अर्थात् जिस फल की प्राप्ति करोड़ों कल्पवृक्ष से हो सकती है वह फल केवल शिव जी के आराधना ही से प्राप्त होता है। अतः शिव जी की सेवा से अवश्य सफलता मिलेगी क्योंकि साहस ही से अच्छे साधन सफल होते हैं ॥ २२ ॥

तुम्हरे आस्रम अबहिं ईस तप साधहिं ।
कहिय उमहिं मनु लाइ जाइ अवराधहिं ॥ २३ ॥

तुम्हारे ही आश्रम में (कैलास पर) शिव जी तपस्या कर रहे हैं, उमा से कहो जा कर मन लगा कर उनकी आराधना (सेवा) करें ॥ २३ ॥

कहि उपाउ दंपतिहि मुदित मुनिबर गये ।
अति सनेह पितु मातु उमहिं सिखवत भये ॥ २४ ॥

दंपति (मैना और हिमवान) को उपाय बता कर नारद मुनि प्रसन्न होते हुए चले गये। अत्यन्त स्नेह सहित माता पिता पार्वती को सिखाने लगे ॥ २४ ॥

सजि समाज गिरराज दीन्ह सबु गिरिजहिं ।
बदति, जननि जगदीस जुवति जिनि सिरजहि ॥ २५ ॥

हिमवान सब समाज एकत्रित कर गिरजा को दिया। माता मैना कहती है, ईश्वर स्त्रियों की सृष्टि न करे। (क्योंकि स्त्रियों को सदा पराधीन रहना पड़ता है) ॥ २५ ॥

जननि-जनक-उपदेस महेसहिं सेवहि ।
अति आदर अनुराग भगति मन भेवहि ॥ २६ ॥

पार्वती जी माता पिता के उपदेश से शिव जी की सेवा करने लगीं। अत्यन्त आदर और प्रेम से शिव की भक्ति में पार्वती जी अपना मन डुबोया करती हैं ॥ २६ ॥

भेवहि भगति मन, बचन करम अनन्य गति हरचरन की।
गौरव सनेह संकोच सेवा जाइ केहि बिधि बरन की ॥
गुनरूप जोवनसींव सुंदरि निरखि छोभ न हर हिये।
ते धीर अच्छत विकारहेतु जो रहत मनसिज बस किये ॥ २७॥

पार्वती जी ने अपने को शिव भक्ति में तर कर दिया करती हैं। मन, वचन और कर्म से अनन्य गति (एकमात्र आश्रय) शिव जी के चरण की है। स्नेह, गौरव, शील, सेवा का वर्णन किस प्रकार हो सकता है अर्थात् वह वर्णनातीत है। गुण, रूप और यौवन की सीमा सुन्दरी पार्वती को देख कर शिव जी के मन में क्षोभ (चंचलता) उत्पन्न नहीं हुआ। मन में क्षोभ उत्पन्न करने वाले कारण के रहते हुए भी जो मनुष्य काम के वश में रखे रहते हैं वे ही सच्चे धीर हैं ॥ २७ ॥

देव देखि भल समउ मनोज बुलायउ।
कहेउ करिय सुरकाजु, साजु सजि धायउ ॥ २८ ॥

देवताओं ने उचित समय देख कर कामदेव को बुलाया। उससे कहा कि देवताओं का काम* करो, यह सुन सामान एकत्रित कर कामदेव शिव जी के पास (उनके मन में क्षोभ उत्पन्न करने ले लिये) जा पहुँचा ॥ २८ ॥

वामदेव सन काम वाम होइ बरतेउ।
जय-जग-मद निदरेसि हर, पायेसि फर तेउ ॥ २९ ॥

शिव जी के साथ कामदेव ने विरोध किया। अर्थात् उनके मन में क्षोभ उत्पन्न किया। संसार को विजय करने के घमंड में कामदेव ने शिव जी का निरादर किया।

*तारक नाम का एक राक्षस था। इसने सब लोकपालों को जीत लिया। कई बार इसने देवताओं को युद्ध में पराजित किया। यह किसी के मारे नहीं मरता था। इसके अत्याचार से दुःखी हो देवतागण ब्रह्मा जी के पास गये। ब्रह्मा जी से उन्होंने अपना दुःख रोया। ब्रह्मा ने कहा कि, इसे और कोई नहीं मार सकता। शिव जी के वीर्य से उत्पन्न पुत्र ही इसे मार सकता है। अतः तुम लोग ऐसा उपाय करो जिसमे शिव जी विवाह करें। देवताओं ने इधर पार्वती जी को शिव जी की सेवा करते देख कामदेव को शिव जी के मन में कामवासना पैदा करने को भेजा। जिससे शिव जी पार्वती के साथ अपना विवाह करें। उनसे पुत्र उत्पन्न हो तो तारक मारा जाय। यही देवताओं का काम था। इसी के लिए कामदेव को शिव जी के पास भेजा था।

उसका फल वह पा गया। भाव यह कि जब शिव जी के मन मे क्षोभ उत्पन्न हुआ तब उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोला। जिससे काम भस्म हो गया ॥ २९ ॥

रति पतिहीन मलीन बिलोकि बिसूरति।
नीलकंठ मृदु सील कृपामय मूरति ॥ ३० ॥

दया, शील और कृपा की मूर्ति नीलकण्ठ महादेव ने पति विहीन (विधवा) दीन दुःखी रति को (विनय करते) देखा ॥ ३० ॥

आसुतोष परितोष कीन्ह बर दीन्हेउ।
सिव उदास तजि बास अनत गम कीन्हेउ ॥ ३१ ॥

आसुतोष (शीघ्र प्रसन्न होने वाले) शिव जी वर* देकर रति को प्रसन्न किया। विरक्त हो कर शिव जी वह स्थान छोड़ कर दूसरी जगह चले गये ॥ ३१ ॥

उमा नेहबस बिकल देह सुधि बुधि गइ।
कलपबेलि बन बढ़त बिषम हिम जनु हइ ॥ ३२ ॥

उमा स्नेहवस ऐसी विकल हो गयीं और अपने शरीर की सुध बुध ऐसी भूल गयीं। मानो वन में बढ़ती हुई कल्पलता को पाला मार गया हो ॥ ३२ ॥

समाचार सब सखिन जाइ घर घर कहे।
सुनत मातु पितु परिजन दारुन दुख दहे ॥ ३३ ॥

(शिव जी के अन्यत्र जाने और उनके वियोग में पार्वती के विकल होने का) समाचार सखियों ने जाकर अपने अपने घर कहे। यह सुन कर पार्वती के माता-पिता तथा परिवार के लोग कठिन दुःख से जलने लगे ॥ ३३ ॥

जाइ देखि अति प्रेम उमहिं उर लावहिं।
बिलपहिं बाम बिधातहिं दोष लगावहिं ॥ ३४ ॥

पार्वती जी के माता पिता परिजन जा कर उनकी दशा देख उन्हें हृदय से लगाते हैं। वे विलाप करके कुटिल विधना को दोष देते हैं ॥ ३४ ॥

---

* शिव जी ने रति को यह वर दिया था—"जब पृथ्वी की भार दूर करने के लिए कृष्णावतार होगा। तब तेरा पति कृष्ण का पुत्र हो कर जन्मेगा। वही कृष्ण का पुत्र अनिरुद्ध हुआ।

जो न होहिं मंगल मग सुर बिधि बाधक।
तौ अभिमत फल पावहिं करि स्रमु साधक ॥ ३५ ॥

यदि देवता और ब्रह्मा शुभ मार्ग में विघ्न डालने वाले न हों तो साधक परिश्रम करके इच्छित फल पा सकते हैं ॥ ३५ ॥

साधक कलेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम कों।
को सुनइ काहि सोहाइ घर, चित चहत चंद्रललाम कों ॥
समुझाइ सबहिं दृढ़ाइ मन, पितु मातु आयसु पाइ कै।
लगि करन पुनि अगमु तपु, तुलसी कहै किमु गाइ कै ॥ ३६ ॥

साधकों के कष्टों को सुना कर सब लोग गौरी को घर चलने के लिये निवेदन करते हैं। पर सुने कौन ? किसको अच्छा लगे। गौरी का मन तो चन्द्रभूषणधारी शिव को चाहता है। पार्वती, सब को समझा कर, अपने मन को दृढ़ कर, पिता माता की आज्ञा पाकर कठिन तप करने लगीं। इस अगम तप को तुलसीदास किस प्रकार गा कर कह सकते हैं ? ॥ ३६ ॥

फिरेउ मातु पितु परिजन लखि गिरिजापन।
जेहि अनुराग लागु चित, सोइ हितु आपन ॥ ३७ ॥

माता, पिता तथा कुटुम्ब के लोग पार्वती जी का प्रण देख कर घर लौट आये। जिस प्रेम में जिसका मन लग गया है वही उसका हितकारी है ॥ ३७ ॥

तजेउ भोग जिमि रोग, लोग अहिगन जनु।
मुनि-मनसहु ते अगम तपहि लायउ मनु ॥ ३८ ॥

पार्वती जी ने भोग को वैसे ही त्याग दिया जैसे रोग, तथा सर्प को मनुष्य त्यागते हैं। मुनियों के मन से भी परे तप करने में उन्होंने मन लगाया ॥ ३८ ॥

सकुचहि बसन बिभूषन परसत जो बपु।
तेहि सरीर हर-हेतु अरंभेउ बड़ तपु ॥ ३९ ॥

जिस शरीर से वस्त्र और भूषण छूने में भी संकुचित होती थीं उसी शरीर से पार्वती जी शिव जी को पाने के लिये बड़ा भारी तप करने लगीं ॥ ३९ ॥

पूजहि सिवहि, समय तिहुँ करहि निमज्जन।
देखि प्रेम व्रतु नेमु सराहहि सज्जन॥ ४०॥

पार्वती जी तीनों समय (प्रातः, मध्यान्ह और सायकाल) स्नान करती हैं और शिव जी का पूजन करती हैं। उनका प्रेम, व्रत तथा नियम को देख सुजान लोग उनकी सराहना करते हैं॥ ४०॥

नींद न भूख पियास, सरिस निसि बासरु।
नयन नीर, मुख नाम, पुलक तनु, हिय हरु॥ ४१॥

पार्वती के लिए दिन रात समान हैं, उन्हें न तो भूख लगती है, न पियास, न नींद ही। उनके नेत्रों में (प्रेम का) आँसु भरा रहता है, वे मुख से श्रीशिव जी का नाम जपा करती हैं, उनका शरीर शिवध्यान में पुलकायमान रहता है। वे अपने हृदय में शिव रूप की स्थापना किये रहती हैं॥ ४१॥

कंद मूल फल असन, कबहुँ जल पवनहिं।
सूखे बेल के पात खात दिन गवनहिं॥ ४२॥

पार्वती जी कभी कंद, मूल तथा फल भोजन करती हैं, कभी जल पी कर रह जाती हैं, कभी पवन ही पी कर अर्थात् निराहार निर्जल व्रत ही रहती हैं। कभी सूखे बेल के पत्ते खा कर ही दिन बिताती हैं॥ ४२॥

नाम अपरना भयो परन जब परिहरे।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे॥ ४३॥

पार्वती जी ने जब पत्ता का भोजन करना भी छोड़ दिया तब उनका नाम अपर्णा पड़ा। उनकी नवीन दिव्य सुन्दर कीर्ति सब लोकों में फैल गयी अर्थात् उनके तप की सब लोकों में प्रशंसा होने लगी॥ ४३॥

देखि सराहहि गिरिजहि मुनिबरु मुनिबहु।
अस तप सुना न दीख कबहुँ काहू कहुँ॥ ४४॥

मुनि श्रेष्ठ और उनकी स्त्रियाँ गिरजा की कठिन तपस्या देख कर उनकी सराहना करती हैं। ऐसा (जैसा पार्वती जी तप कर रही हैं) न तो कभी किसी ने देखा न सुना ही॥ ४४॥

काहू न देख्यो कहहिं यह तपु जोग फल फल चारि का।
नहिं जानि जाइ, न कहति, चाहति काह कुधर-कुमारिका॥
बटुवेष पेषन पेम पन व्रत नेम ससिसेखर गये।
मनसहि समरपेउ आपु गिरिजहि, बचन मृदु बोलत भये॥ ४५॥

(मुनि तथा उनकी स्त्रियाँ कहती हैं कि) ऐसा तप किसी ने नहीं देखा। वे कहती हैं कि, इस तप के योग्य तो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चार फलों का भी फल है। पर्वतकन्या पार्वती क्या चाहती हैं। यह न तो जाना ही जाता है, न तो वह कहती ही है, शिव जी बटु (ब्रह्मचारी) का वेश बना कर पार्वती के प्रेम, प्रण, व्रत तथा नियम की परीक्षा लेने गये। मन से तो अपने को पार्वती को समर्पण कर दिया और मुख से मधुर वचन बोले॥ ४५॥

देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ।
मोर कठोर सुभाय, हृदय अस आयउ॥ ४६॥

पार्वती जी की दशा देख कर दयालु शिव जी दुःखी हुए। उन्होंने समझा कि मेरा स्वभाव बड़ा कठिन है कि साधकों को मेरी प्रसन्नता के लिए इतना कठिन तप करना पड़ता है॥ ४६॥

बंस प्रसंसि, मातु पितु कहि सब लायक।
अमिअ बचन बटु बोलेउ सुनि सुखदायक॥ ४७॥

वंश की बड़ाई तथा माता पिता को सब योग्य कह कर ब्रह्मचारी वेशधारी शिव जी मधुर वचन बोले। जो सुनने में सब सुख देने वाला था॥ ४७॥

देवि करौं कछु विनय सो बिलगु न मानब।
कहौं सनेह सुभाय साँच जिय जानब॥ ४८॥

हे देवि! मैं कुछ विनय करता हूँ, उससे बुरा न मानना। आप सत्य समझिये। मैं अपने स्वाभाविक स्नेह के वश कहता हूँ॥ ४८॥

जनमि जगत जस प्रगटिहु मातु-पिता कर।
तीयरतन तुम उपजिहु भव-रतनाकर॥ ४९॥

तुमने जन्म ले कर अपने माता पिता का यश संसार में प्रकाशित किया। तुम संसार रूपी सागर में स्त्री रूपी रत्न पैदा हुई हो अर्थात् तुम स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ हो॥ ४९॥

अगम न कछु जग तुम कहँ, मोहि अस सूझइ।
बिनु कामना कलेस कलेस न बूझइ ॥ ५० ॥

मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि, संसार में तुम्हारे लिए कोई वस्तु अप्राप्य नहीं है। निष्काम (विना इच्छा के ही) तप करने वाला ही कष्ट को कष्ट नहीं गिनता। मालूम होता है कि तुम निष्काम तप कर रही हो, तभी तो इतना कष्ट सह रही हो ॥ ५० ॥

जौ बर लागि करहु तपु तौ लरिकाइय।
पारस जौ घर मिलै तौ मेरु कि जाइय ॥ ५१ ॥

यदि तुम वर के लिए तप कर रही हो तो यह तुम्हारा लड़कपन है। यदि पारस (पत्थर) घर ही में मिल जाय तो मेरु पर्वत पर जाने की क्या आवश्यकता है ॥ ५१ ॥

मोरे जान कलेस करिय बिनु काजहि।
सुधा कि रोगिहि चाहहि, रतन कि राजहि ॥ ५२ ॥

मेरी समझ से तुम विना काम ही कष्ट उठा रही हो। क्या अमृत रोगी को चाहता है, या रत्न राजा को ? अर्थात् रोगी अमृत को स्वयं ही ढूंढ़ता है और राजा रत्न को। तुम तो रूप यौवन धन धान्य युक्त हो तुम्हें तो स्वयं ही वर मिल जायगा। तुम वर के लिए व्यर्थ क्यों कष्ट उठाती हो ॥ ५२ ॥

लखि न परेउ तप कारन बटु हिय हारेउ।
सुनि प्रिय बचन सखीमुख गौरि निहारेउ ॥ ५३ ॥

ब्रह्मचारी को पार्वती के तप का कारण जान न पड़ा। अतः वह हृदय से हार गया। यह प्रिय वचन सुन कर सखी की ओर पार्वती जी ने देखा ॥ ५३ ॥

गौरि निहारेउ सखीमुख, रुख पाइ तेहि कारन कहा।
तप करहिं हर हितु सुनि बिहँसि बटु कहत मुरुखाई महा ॥
जेहि दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस-करि बर बावरो।
हित लागि कहौं सुभाय सो बड़ बिषम बैरी रावरो ॥ ५४ ॥

पार्वती जी ने सखी को ओर देखा। उनका रुख देख कर बटुरूपधारी शिव जी से सखी ने कहा—" यह शिव जी को वर पाने के लिए तप कर रही हैं। यह सुन

ब्रह्मचारी ने कहा-यह तो बड़ी भारी मूर्खता है। मैं अपने स्वभाव से ही तुम्हारी भलाई के लिए कहता हूँ–" जिसने तुम्हें ऐसा उपदेश दिया है कि, कष्ट उठा कर पगले वर को वरना, वह तुम्हारा बड़ा भारी शत्रु है ॥ ५४ ॥

कहहु काह सुनि रीझिहु बरु अकुलीनहिं।
अगुन अमान अजाति मातु-पितु-हीनहिं ॥ ५५ ॥

कहो तो, तुम क्या सुन कर परिवार रहित वर पर रीझ गयी हो। वह तो गुनहीन, मान रहित तथा माता पिता से भी रहित है ॥ ५५ ॥

भीख माँगि भव खाहिं, चिता नित सोवहिं।
नाचहिं नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं ॥ ५६ ॥

शिव जी तो प्रति दिन भीख माँग कर खाते हैं और श्मशान में सोते हैं। जहाँ नग्न पिशाच नाचते हैं और पिशाचिनी देखा करती हैं ॥ ५६ ॥

भाँग धतूर अहार, छार लपटावहिं।
जोगी, जटिल, सरोष, भोग नहिं भावहिं ॥ ५७ ॥

उनका भोजन भाँग तथा धतूरा है। वे सारे शरीर में राख लपेटे रहते हैं। वे योगी हैं, जटाधारी हैं, क्रोधी हैं, तथा उनको भोग भी अच्छा नहीं लगता ॥ ५७ ॥

सुमुखि सुलोचनि हर मुखपंच तिलोचन।
बामदेव फुर नाम, काम-मद-मोचन ॥ ५८ ॥

हे सुन्दर मुख तथा सुन्दर नेत्र वाली! महादेव जी के पाँच मुँह तथा तीन नेत्र हैं। फिर उनका नाम वामदेव (विषम रूप वाले देवता) भी सत्य ही है (क्योंकि) वे कामदेव के मद को भी चूर करने वाले हैं ॥ ५८ ॥

एकउ हरहिं न वर गुन, कोटिक दूषन।
नरकपाल, गजखाल, व्याल, विष भूषन ॥ ५९ ॥

शिव जी में वर योग्य एक भी गुण नहीं हैं; किन्तु उनमें करोड़ों दोष हैं। मनुष्य की खोपड़ी, हाथी का चमड़ा, सर्प तो उनके गहने हैं ॥ ५९ ॥

कहँ राउर गुन सील सरूप सुहावन।
कहाँ अमंगल बेषु बिसेषु भयावन ॥ ६० ॥

कहाँ तो तुम्हारा गुण, शील और सुहावना स्वरूप है और कहाँ शिव जी का अमंगल वेश और खास कर डरावना है। भला यह जोड़ी मिलती है ॥ ६० ॥

जो सोचहि ससिकलहि सो सोचहि रौरेहि ।
कहा मोर मन धरि न बरिय बर बौरेहि ॥ ६१ ॥

जो सदा शशिकला को प्रसन्न रखने की चिंता किया करता है, वह क्या तुम्हारी चिंता करेगा। भाव यह की शशिकला रूपी एक सवती भी तुम्हारी होगी और शिव जी उसे बहुत चाहते हैं तब भला तुम्हें वे कब चाहेंगे। मेरा कहना मान कर पगले वर को मत वरो ॥ ६१ ॥

हिये हेरि हठ तजहु, हठै दुख पैहहु ।
ब्याह-समय सिख मोरि समुझि पछितैहहु ॥ ६२ ॥

हठ छोड़कर मन में विचार देखो। हठ करने से दुःख पाओगी। मेरी सीख को ब्याह के समय याद कर पछताओगी ॥ ६२ ॥

पछिताब भूत पिसाच प्रेत जनेत ऐहैं साजि कै ।
जमधार सरिस निहारि सब नर नारि चलिहहिं भाजि कै ॥
गज अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै ।
कोउ प्रगट कोउ हिय कहिहि मिलवत अमिअ माहुर घोरि कै ॥६३॥

तुम उस समय पछताओगी, जब शिव जी पिसाच और प्रेतों की बरात साज कर आवेंगे। उस बरात को यम की सेना के समान देखते ही स्त्री पुरुष भाग चलेंगे। शिव के हाथी के चमड़े और तुम्हारे दिव्य वस्त्र से सखी जब गंठबन्धन करेंगी तब मुँह छिपा कर हँसेंगी। कोई प्रकाश में, कोई मन ही मन कहेंगी कि, अमृत और जहर घोर कर मिलाया जाता है ॥ ६३ ॥

तुमहिं सहित असवार बसह जब होइहहिं ।
निरखि नगर नर नारि बिहँसि मुख गोइहहिं ॥ ६४ ॥

जब शिव जी तुम्हारे सहित बसहा बैल पर सवार होंगे तो नगर के स्त्री पुरुष यह देख कर मुसक्या के मुँह छिपावेंगे ॥ ६४ ॥

बटु करि कोटि कुतर्क जथा रुचि बोलइ ।
अचल-सुता-मन-अचल बयारि कि डोलइ ॥ ६५ ॥

ब्रह्मचारी वेशधारी शिव जी अनेक बुरी तर्कना युक्त मनमानी बातें कहते हैं। पर्वतकन्या पार्वती का मन अचल है, वह क्या हवा से डोल सकता है। अर्थात् पार्वती जी का शिव जी में अटल प्रेम है उनका मन किसी के बहकाने से नहीं बहक सकता ॥ ६५ ॥

साँच सनेह साँचि रुचि जो हठि फेरइ।
सावनसरित सिंधुरुख सूप सों घेरइ ॥ ६६ ॥

सत्य स्नेह तथा सत्य वासना को जो हठ करके फेरना चाहता है वह मानो सावन महीने के नदियों को समुद्र की ओर जाते हुए सूप से रोकना चाहता है। भाव यह कि जैसे नदी नहीं रुक सकती वैसे सत्य प्रेम भी नहीं छूट सकता ॥६६॥

मनि बिनु फनि, जलहीन मीन तनु त्यागइ।
सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ ॥ ६७ ॥

जैसे मणि के बिना सर्प और जल के बिना मछली अपना प्राण त्याग देते हैं (पर वे उनको दोषी नहीं समझते) वैसे ही जिसका मन जिसमें लग जाता है, वह उसके दोषों को नहीं गिनता ॥ ६७ ॥

करनकटुक बटु बचन बिसिष सम हिय हये।
अरुन नयन चढ़ि भ्रुकुटि अधर फरकत भये ॥ ६८ ॥

ब्रह्मचारी के कर्णकटु (अप्रिय) वचन पार्वती जी के हृदय में बाण सरीखे लगे। पार्वती के नेत्र लाल हो गये, भौंहें तन गये और ओठ काँपने लगा ॥ ६८ ॥

बोली फिरि लखि सखिहि काँपु तनु थर थर।
आलि बिदा करु बटुहि बेगि, बड़ बर बर ॥ ६९ ॥

(क्रोध से) पार्वती जी का शरीर थर थर काँपने लगा। वे सखी की ओर देख कर कहने लगीं। हे आलि! (सखि!) इस ब्रह्मचारी को शीघ्र बिदा करो। यह बड़ा बकवादी है ॥ ६९ ॥

कहुँ तिय होहिं सयानि सुनहिं सिख राउरि।
बौरेहि के अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि ॥ ७० ॥

(फिर पार्वती जी ब्रह्मचारी से कहने लगीं) जहाँ कहीं चतुर स्त्रियाँ होंगीं (वहीं जाओ वे ही) तुम्हारी सिख सुनेंगी। मै तो बौरहे के प्रेम में पगली हो गयी हूँ (मैं तुम्हारी सिख क्या सुनूँ) ॥ ७० ॥

दोसनिधान, इसानु सत्य सबु भाषेउ।
मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ ॥ ७१ ॥

शिव जी दोष के भण्डार हैं, जो कुछ तुमने कहा है वह सब सच्च है, पर ललाट में जो ब्रह्मा ने लिख दिया है उसे कौन मेट सकता है ॥ ७१ ॥

को करि बादु बिबादु बिषादु बढ़ावइ।
मीठ काह कवि कहहिं जाहि जोइ भावइ ॥ ७२ ॥

वाद विवाद करके कौन दुःख उठावे। कवि किसको मीठ कहते हैं, जिसको जो अच्छा लगता है उसी को ॥ ७२ ॥

भइ बड़ि बार आलि कहुँ काज सिधारहि।
बकि जनि उठहि बहोरि, कुजुगुति सँवारहि ॥ ७३ ॥

बहुत देर हुई। सखी, अपने काम से चला जाय। यह फिर कुछ न कह बैठे, किसी बुरे युक्ति की रचना फिर न रचे अर्थात् शिव जी के विषय में यह फिर कोई बुरी बात न निकाले ॥ ७३ ॥

जनि कहहि कछु बिपरीत जानत प्रीति रीति न बात की।
सिव साधु-निंदकु मंद अति जो सुनै सोउ बड़ पातकी ॥
सुनि बचन सोधि सनेह तुलसी साँच अबिचल पावनो।
भये प्रकट करुनासिंधु संकर भाल चंद्र सुहावनो ॥ ७४ ॥

फिर यह शिव जी के विरुद्ध कुछ न कह बैठे। यह प्रेम की रीति और बात करने की तरीका नहीं जानता। शिव जी तथा साधु की निन्दा करने वाला बड़ा नीच होता है, और उसे जो सुने वह भी बड़ा पापी है। तुलसीदास जी कहते हैं कि पार्वती जी के स्नेह मय वचन सुन और उनके प्रेम को सत्य, अटल और पवित्र देख दयासागर शिव जी प्रकट हुए, अर्थात् ब्रह्मचारी का वेश त्याग शिव वेश में प्रकट हुए जिनके ललाट पर चन्द्रमा शोभित हो रहा था ॥ ७४ ॥

सुंदर गौर सरीर भूति भलि सोहइ।
लोचन भाल बिसाल बदन मनु मोहइ ॥ ७५ ॥

शिव जी के सुन्दर गोरे शरीर में भस्म बहुत ही शोभायमान हो रहा है। उनके विशाल ललाट पर (तीसरा) नेत्र शोभित हो रहा है तथा उनका मुख मन को हरे लेता है ॥ ७५ ॥

सैलकुमारि निहारि मनोहर मूरति।
सजल नयन हिय हरषु पुलक तनु पूरति ॥ ७६ ॥

शिव जी के मनोहर रूप को देख कर पार्वती के नेत्रों में आँसू भर आये। हृदय में हर्ष होने से प्रफुल्लता से शरीर भर गया अर्थात् उनका शरीर पुलकायमान हो गया ॥ ७६ ॥

पुनि पुनि करै प्रनाम, न आवत कछु कहि।
देखौं सपन कि सौंतुख ससिसेखर, सहि ॥ ७७ ॥

पार्वती जी शिव जी को बार बार प्रणाम करती हैं। उनसे कुछ कहते नहीं बनता (वे मन में कहती हैं कि, क्या मैं) स्वप्न देख रही हूँ या चन्द्रशेखर (शिव जी) को प्रत्यक्ष रूपसे देख रही हूँ ॥ ७७ ॥

जैसे जनमदरिद्र महामनि पावइ।
पेखत प्रगट प्रभाव प्रतीति न आवइ ॥ ७८ ॥

(पार्वती जी की वैसी ही दशा हो गई) जैसे जन्म के दरिद्र को महामणि (पारस पत्थर) मिल जाने से होती है और उसके प्रभाव को प्रत्यक्ष देखते हुए भी उसको विश्वास नहीं होता ॥ ७८ ॥

सफल मनोरथ भयउ, गौरि सोहइ सुठि।
घर तें खेलत मनहुँ अबहिं आई उठि ॥ ७९ ॥

इच्छित फल पाने से पार्वती जी वैसे ही सोहावने लगने लगीं जैसे घर से खेलने के लिए अभी चली आती है। भाव यह कि शिव जी को देख पार्वती जी का तप से खिन्न शरीर प्रफुल्लित हो उठा। यह नहीं मालूम होता था कि, इनका शरीर तप से क्षीण हो गया था ॥ ७९ ॥

देखि रूप अनुराग महेस भये बस।
कहत बचन जनु सानि सनेह-सुधा-रस ॥ ८० ॥

पार्वती जी के रूप और प्रेम को देख कर शिव जी उनके वश हो गये। वे ऐसे वचन बोले मानो स्नेह रूपी अमृत में सना हो अर्थात् वे मधुर प्रेम युक्त वचन बोले ॥ ८० ॥

हमहिं आजु लगि कनउड़ काहु न कीन्हेउ।
पार्वती तप प्रेम मोल मोहिं लीन्हेउ ॥ ८१ ॥

आज तक किसी ने हमें अपने अधीन नहीं किया था। पर पार्वती ने अपने तप और प्रेम से मुझे मोल ले लिया। अर्थात् पार्वती के कठिन तप और उनके शुद्ध प्रेम के वश मैं हो गया ॥ ८१ ॥

अब जो कहहु सो करउँ बिलंब न यहि घरि।
सुनि महेस प्रिय बचन पुलकि पाँयन परि ॥ ८२ ॥

अब जो कहो वही करूँ, इस क्षण (तुम्हारा कहना करने में) विलंब न होगा। शिव जी के प्रिय वचन सुन कर पार्वती जी प्रफुल्लित हो उनके चरणों पर गिर पड़ीं ॥ ८२ ॥

परि पाँय सखिमुख कहि जनाये आप बाप अधीनता।
परितोषि गिरिजहि चले बरनत प्रीति नीति प्रबीनता ॥

हर हृदय धरि घर गौरि गवनी, कीन्ह बिधि मनभावनो।
आनंद प्रेम समाज मंगल गान बाजु बधावनो ॥ ८३ ॥

पार्वती जी शिव जी के चरणों पर गिर कर सखियों के मुख से अपने को अपने पिता के अधीन बतलाया। इस बात को प्रकट किया कि मैं अपने पिता के अधीन हूँ। आप पिता से विवाह सम्बन्ध कीजिए। शिव जी उन्हें सन्तुष्ट कर प्रीत की नीति युक्त चतुराई का वर्णन करते चले। पार्वती जी शिव जी को अपने हृदय में धर कर घर गयीं। ब्रह्मा ने उनका मन चाहा किया। अर्थात् शिव जी वर उन्हें मिल गये। सब समाज आनन्द प्रेम में भर मङ्गल गान करने लगा और बधावें बजने लगे ॥ ८३ ॥

सिव सुमिरे मुनि सात आइ सिरनाइन्हि।
कीन्ह संभु सनमानु जनमफल पाइन्हि ॥ ८४ ॥

शिव जी ने सप्तर्षियों* का स्मरण किया, बुलवाया। उन्होंने आ कर शिव जी को प्रणाम किया। शिव जी ने उनका सम्मान किया और वे अपने जन्म फल को पा गये ॥ ८४ ॥

सुमिरहिं सकृत तुम्हहिं जन तेइ सुकृतीवर।
नाथ जिन्हहिं सुधि करिअ तिन्हहिं सम तेइ, हर ॥ ८५ ॥

हे हरे! जो आपको एक वार भी स्मरण करते हैं, वही पुण्यात्मा जन हैं। और जिनकी सुधि आप करते हैं, उनके समान तो वे ही हैं। भाव यह कि जो आपको एक वार स्मरण करते हैं, वे तो पुण्यपद को प्राप्त होते हैं। पर जिनकी सुधि आप करते हैं, उनके समान तो दूसरा कोई है ही नहीं ॥ ८५ ॥

सुनि मुनिबिनय महेस परम सुख पायउ।
कथाप्रसंग मुनीसन्ह सकल सुनायउ ॥ ८६ ॥

सप्तर्षियों की विनती सुन कर शिव जी को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने मुनीश्वरों को सब वातें (पार्वती की तपस्या और अपने वरदान की कथा) कह सुनायी ॥ ८६ ॥

जाहु हिमाचल-गेह प्रसंग चलायहु।
जौ मन मान तुम्हार तौ लगन लिखायहु ॥ ८७ ॥

शिव जी ने सप्तर्षियों से कहा, आप लोग हिमवान के घर जाइए। विवाह की वातें चलाइये। यदि आपका मन माने आप लोगों के मन के अनुकूल सम्बन्ध स्थिर हो जाय तो विवाह का लगन भी लिखवा लेना ॥ ८७ ॥

अरुंधती मिलि मैनहिं बात चलाइहि।
नारि कुसल इहि काजु, काजु बनि आइहि ॥ ८८ ॥

अरुंधती (वशिष्ठ जी की स्त्री) मैना के साथ वातें करेंगी। स्त्रियाँ इस कार्य, विवाह सम्बन्ध स्थिर करने में, चतुर होती हैं। अरुंधती के वातचीत से काम सिद्ध होगा। अर्थात् विवाह तै हो जायगा ॥ ८८ ॥

दुलहिनि उमा, ईसु बर, साधक ए मुनि।
बनिहि अवसि यहु काज गगन भइ अस धुनि ॥ ८९ ॥

---

*सप्तर्षि ये हैं—कश्यप, अत्रि, गौतम, यमदग्नि, विश्वामित्र, वसिष्ठ और भरद्वाज।

दुलहिन पार्वती जी हैं, शिव जी वर हैं, इस सम्बन्ध के साधक (पक्का करने वाले) ये सप्तर्षि हैं। अतः यह काम अवश्य ही सिद्ध होगा। ऐसी आकाश-वाणी हुई ॥ ८९ ॥

भयउ अकनि आनंद महेस मुनीसन्ह ।
देहिं सुलोचनि सगुन कलस लिये सीसन्ह ॥ ९० ॥

आकाशवाणी सुन कर शिव जी तथा सप्तर्षियों को आनन्द प्राप्त हुआ। सिर पर जल से भरे कलसे लिये हुए सुन्दर नेत्र वाली स्त्रियाँ सगुन जनाती हैं ॥ ९० ॥

सिव सों कहे दिन ठाउँ बहोरि मिलनु जहँ ।
चले मुदित मुनिराज गये गिरिबर पहँ ॥ ९१ ॥

शिव जी से फिर मिलने के लिये दिन और स्थान बता कर प्रसन्न होते हुए मुनिवर हिमवान के पास गये ॥ ९१ ॥

गिरिगेह गे अति नेह आदर पूजि पहुनाई करि ।
घर बात घरनि समेत कन्या आनि सब आगे धरि ॥
सुख पाइ बात चलाइ सुदिनु सोधाइ गिरिहि सिखाइ कै ।
ऋषि साथ प्रातहिं चले प्रमुदित ललित लगन धराइ कै ॥ ९२ ॥

सप्तर्षि हिमवान के घर गये। उन्होंने उन लोगों का अति आदर और स्नेह से पूजन कर पहुनई की। घर की सामग्री, स्त्री तथा कन्या समेत सब कुछ सप्तर्षियों के आगे धर दिया। हिमवान के आदर सत्कार से सुखी हो कर ऋषियों ने विवाह की बात चलायी (विवाह सम्बन्ध तय हो जाने पर) शुभ मुहूर्त निश्चित करके सुन्दर लगन धरा कर सप्तर्षि प्रसन्न होते हुए प्रातःकाल वहाँ से चल दिये ॥ ९२ ॥

विप्रबृंद सन्मानि पूजि कुलगुरु सुर ।
परेउ निसानहिं घाउ, चाउ चहुँ दिसिपुर ॥ ९३ ॥

ब्राह्मण मण्डलियों, कुलगुरु तथा देवताओं को सम्मान सहित हिमवान ने पूजा की। (विवाह सम्बन्ध की सूचना के लिए) डंके पर चोब पड़ा नगर में चारों ओर उछाह छा गया ॥ ९३ ॥

गिरि, वन, सरित, सिंधु, सर सुनइ जो पायउ ।
सब कहँ गिरिवर-नायक नेवति पठायउ ॥ ६४ ॥

पर्वत, वन, नदियाँ, समुद्र तलाव आदि जहाँ तक उनके सुनने में आया उन सब को हिमवान ने निमन्त्रण भेजा ॥ ९४ ॥

धरि धरि सुंदर वेष चले हरषित हिये ।
कंचन चीर उपहार हार मनिगन लिये ॥ ६५ ॥

वे सब सुन्दर वेश धर धर कर प्रसन्न होते हुए हिमवान के यहाँ आने को चल पड़े । वे सब सोना, वस्त्र, हार, मणि आदि उपहार की वस्तुएँ लिये हुए हिमवान के घर आये ॥ ९५ ॥

कहेउ हरषि हिमवान बितान बनावन ।
हरषित लगीं सुवासिनि मंगल गावन ॥ ६६ ॥

हर्षित हो हिमवान ने मण्डप बनाने के लिये कहा और प्रसन्न हो कर सोहागिन स्त्रियाँ मंगल गान करने लगीं ॥ ९६ ॥

तोरन कलस चँवर धुज बिबिध बनाइन्हि ।
हाट पटोरन्हि छाय सफल तरु लाइन्हि ॥ ६७ ॥

बाजारों में अनेक प्रकार के तोरण, कलश, चँवर ध्वजा तथा रेशमी वस्त्र से मण्डप बनाये गये । फल सहित मांगलिक वृक्ष लगाये गये ॥ ९७ ॥

गौरी नैहर केहि बिधि कहहुँ बखानिय ।
जनु ऋतुराज मनोज-राज रजधानिय ॥ ६८ ॥

पार्वती जी की नैहर का बनाव किस तरह कहूँ मानो वसन्त ऋतु में कामदेव की राजधानि शोभायमान हो ॥ ९८ ॥

जनु राजधानि मदन की बिरची चतुर विधि और ही ।
रचना विचित्र विलोकि लोचन विथक ठौरहि ठौर ही ॥
यहि भाँति ब्याहु समाजु सजि गिरिराजु मगु जोवन लगे ।
तुलसी लगन लै दीन्ह मुनिन्ह महेस आनँद-रँग-मगे ॥ ६६ ॥

मानों ब्रह्मा ने कामदेव की राजधानी दूसरी ही बना दी है। हिमवान के यहाँ की सजावट को देख कर स्थान स्थान की शोभा देखने में नेत्र थकित हो जाते हैं। इस प्रकार व्याह का साज सजा कर हिमवान बरात आने की प्रतीक्षा करने लगे। तुलसीदास जी कहते हैं उधर सप्तर्षियों ने लग्नपत्रि लेजा कर शिव जी को दी। शिव जी लग्नपत्रि पा कर आनन्द के रंग में मग्न हो गये, अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ९९ ॥

बेगि बुलाइ बिरंचि बँचाइ लगन तब।
कहेन्हि बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब ॥ १०० ॥

ब्रह्मा को तुरन्त बुला कर शिव जी ने लग्नपत्रि बचवायी और उनसे कहा कि, सब देवताओं को बुला कर ब्याहने चलिये ॥ १०० ॥

बिधि पठये जहँ तहँ सब सिवगन धावन।
सुनि हरषहिं सुर कहहिं निसान बजावन ॥ १०१ ॥

ब्रह्मा ने जहाँ तहाँ शिव जी के गण के हरकारों को भेजा (शिव जी के विवाह की बात) सुन देवता प्रसन्न होते हैं और बाजे बजाने को कहते हैं ॥ १०१ ॥

रचहिं बिमान बनाइ सगुन पावहिं भले।
निज निज साजु समाजु साजि सुरगन चले ॥ १०२ ॥

देवता लोग अपना अपना विमान सजाते हैं, उन्हें सुन्दर सगुन होते हैं। अपने अपने साज सहित अपनी मण्डली सजा देवता लोग (बरात में सामिल होने के लिए) चल दिये ॥ १०२ ॥

मुदित सकल सिव दूत भूतगन गाजहिं।
सूकर, महिष, स्वान, खर बाहन साजहिं ॥ १०३ ॥

शिव जी के दूत तथा भूतगण मग्न होते हैं। सूअर, भैंसा, कुत्ता, गदहा आदि अपना अपना वाहन सजाते हैं ॥ १०३ ॥

नाचहिं नाना रंग, तरंग बढ़ावहिं।
अज, उलूक, बृकनाद गीत गन गावहिं ॥ १०४ ॥

शिव जी के दूत गण अनेक प्रकार के नाच नाचते तथा मौज की लहर बढ़ाते हैं, आनन्द बढ़ाते हैं। बकरा, उल्लू तथा भेड़िये की बोली में (वे सब मग्न हो) गीत गाते हैं ॥ १०४ ॥

रमानाथ, सुरनाथ, साथ सब सुरगन।
आये जहँ बिधि संभु देखि हरषे मन॥ १०५॥

विष्णु तथा इन्द्र सब देवताओं को साथ लिये हुए वहाँ आये जहाँ ब्रह्मा और शिव जी थे। उन्हें देख कर उन लोगों का मन प्रसन्न हुआ॥ १०५॥

मिले हरिहि हर हरषि सुभाखि सुरेसहिं।
सुर निहारि सनमानेउ, मोदु महेसहिं॥ १०६॥

शिव जी प्रसन्न हो विष्णु और इन्द्र से मिल कर कुशल पूछा और देवताओं का सम्मान किया। और उन्हें देख शिव जी को आनन्द प्राप्त हुआ॥ १०६॥

बहुबिधि बाहन जान बिमान बिराजहिं।
चलि बरात निसानु गहागह बाजहिं॥ १०७॥

अनेक तरह की सवारी, (घोड़ा, हाथी आदि) यान, (पालकी आदि) और विमान शोभायमान हो रहे हैं। शिव जी की बरात चली। गहगहे बाजे बजने लगे॥ १०७॥

बाजहिं निसान, सुगान नभ, चढ़ि बसह बिधुभूषन चले।
बरषहिं सुमन जय जय करहिं सुर, सगुन सुभ मंगल भले॥
तुलसी बराती भूत प्रेत पिसाच पसुपति सँग लसे।
गजछाल, व्याल, कपालमाल बिलोकि बर सुर हरि हँसे॥१०८॥

नगाड़े बजते हैं, आकाश में सुन्दर गान होते हैं। बैल पर चढ़ कर चन्द्रभूषण (चन्द्रमा के भूषण धारण करने वाले शिव जी) चले। पुष्पवृष्टि होती है। देवता जय जय करते हैं। सुन्दर शुभ माँगलिक सगुन होते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं, शिव जी के संग में भूत, प्रेत, पिशाच बराती हैं, हाथी की चमड़ा पहने, सर्प लपेटे, नरमुण्ड की माला पहने हुए दूलह (शिव जी) को देख देवता और विष्णु हँस पड़े॥ १०८॥

बिबुध बोलि हरि कहेउ निकट पुर आयउ।
आपन आपन साज सबहिं बिलगायउ॥ १०९॥

विष्णु ने देवताओं को बुला कर कहा कि, हम लोग नगर के निकट आ गये (अपना अपना समाज अलग कर लो)। अतः सब अपना अपना समाज अलग कर लिये॥ १०९॥

प्रमथनाथ के साथ प्रमथगन राजहिं।
बिबिध भाँति मुख, बाहन बेष बिराजहिं ॥ ११० ॥

भूतनाथ शिव जी के साथ भूतों का दल शोभायमान है। भिन्न भिन्न तरह के उनके मुँह, वाहन तथा उनका वेश है ॥ ११० ॥

कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिं।
नरकपाल जल भरि भरि पियहिं पियावहिं ॥ १११ ॥

भूत, पिशचादि शिव जी के गण कछुवे की खोपड़ी पर चमड़ा मढ़ कर नगाड़े बजाते हैं तथा मनुष्य की खोपड़ी में जल भर भर के स्वयं पीते हैं और दूसरों को पिलाते हैं ॥ १११ ॥

बर अनुहरति बरात बनी हरि हँसि कहा।
सुनि हिय हँसत महेस, केलि कौतुक महा ॥ ११२ ॥

विष्णु ने हँस कर कहा—वर के योग्य ही बरात सजी है। अर्थात् जैसा वेश शिव जी का है उसी के अनुसार उनके गण भी हैं। यह सुन शिव जी मन में हँसते हैं, बड़ा ही कौतुहल होता है ॥ ११२ ॥

बड़ बिनोद मग मोद न कछु कहि आवत।
जाइ नगर नियरानि बरात बजावत ॥ ११३ ॥

बड़ा आनन्द हो रहा है, मार्ग के आनन्द के विषय में कुछ कहते नहीं बनता। बाजे बजाते हुए बरात हिमवान के नगर के समीप जा पहुँची ॥ ११३ ॥

पुर खरभर, उर हरषेउ अचलु-अखंडलु।
परब उदधि उमंगेउ जनु लखि बिधुमंडल ॥ ११४ ॥

नगर में खलबली पड़ गयी। राजा हिमाचल का समस्त राज्य ऐसा प्रसन्न हुआ मानों पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल (पूर्ण चन्द्र) को देख समुद्र उमड़ पड़ा हो ॥ ११४ ॥

प्रमुदित गे अगवान, बिलोकि बरातहि।
भभरे, बनइ न रहत, न बनइ परानहि ॥ ११५ ॥

प्रसन्न होते हुए हिमवान के तरफ के लोग बरात की अगवानी के लिए गये, पर बराती को देख, सब डर से घबड़ा उठे, न तो ठहरते ही बनता है, न भागते ही ॥११५॥

चले भाजि गज बाजि फिरहिं नहिं फेरत।
बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत॥ ११६॥

हाथी घोड़े भाग चले। लौटाने से भी नहीं लौटते। इस भभड़ में लड़के भुला गये, वे अपना अपना घर ढूँढ़ते फिरते हैं॥ ११६॥

दीन्ह जाइ जनवास सुपास किये सब।
घर घर बालक बात कहन लागे तब॥ ११७॥

बरातियों को जनवासा दिया गया तथा सब तरह के आराम का प्रबन्ध भी कर दिया गया। लड़के अपने अपने घर कहने लगे॥ ११७॥

प्रेत बैताल बराती, भूत भयानक।
बरद चढ़ा बर बाउर, सबइ सुबानक॥ ११८॥

भयङ्कर प्रेत, बैताल तथा भूत तो बराती हैं। बौरहा वर बैल पर सवार है, सब समान बहुत सुन्दर हैं, (व्यंग से बरात की भयंकरता के स्थान में सुन्दरता कहा गया है)॥ ११८॥

कुसल करहिं करतार कहहिं हम साँचिय।
देखब कोटि बियाह जियत जो बाँचिय॥ ११९॥

ब्रह्मा कुशल करे। हम लोग यह सत्य ही कहते हैं, (इस बरात को देख कर) जो जीते बच जायँगे वे करोड़ों बरात देखेंगे॥ ११९॥

समाचार सुनि सोचु भयउ मन मैनहिं।
नारद के उपदेस कवन घर गे नहिं॥ १२०॥

यह समाचार सुन कर मैना चिंतित हो गयीं। वे कहने लगीं कि, नारद के उपदेश से कौन घर बरबाद नहीं हुआ। अर्थात् नारद ने जिसको उपदेश दिया वही घर बरबाद हुआ॥ १२०॥

घरघाल चालक कलह प्रिय कहियत परम परमारथी।
तैसो बरेखो कीन्हि पुनि मुनिसात स्वारथ सारथी॥
उर लाइ उमहिं अनेक बिधि, जलपति जननि दुख मानई।
हिमवान कहेउ इसान महिमा अगम, निगम न जानई॥ १२१॥

नारद कहने में तो बड़े परमार्थी हैं, पर वे धूर्त हैं तथा दूसरे का घर बिगाड़ने और झगड़ा लगाने वाले हैं। वैसे ही स्वार्थ के साधक सप्तर्षियों ने अपने स्वभाव के अनुकूल ही विवाह सम्बन्ध करवाया है। पार्वती को हृदय से लगा कर मैना दुःखी हो अनेक प्रकार की बातें कहती हैं। हिमवान ने (मैना को सान्त्वना देते हुए) कहा कि शिव जी की महिमा अपार है, उसे वेद शास्त्र भी नहीं जानते ॥ १२१ ॥

सुनि मैना भइ सुमन, सखी देखन चली।
जहँ तहँ चरचा चलइ हाट चौहट गली ॥ १२२ ॥

हिमवान की बात सुन कर मैना का चित्त स्थिर हुआ। सखी बरात को देखने चली, जहाँ तहाँ बाजार चौराहे तथा गलियों में यही चरचा चल रही है ॥ १२२ ॥

श्रीपति, सुरपति, बिबुध बात सब सुनि सुनि।
हँसहिं कमलकर जोरि मोरि मुख पुनि पुनि ॥ १२३ ॥

लक्ष्मी पति विष्णु, इन्द्र तथा देवता गण बातें सुन सुन कर शिव जी को हाथ जोड़ कर बार बार मुँह फेर कर हँसते हैं ॥ १२३ ॥

लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर।
भये सुंदर सत कोटि मनोज मनोहर ॥ १२४ ॥

सांसारिक दशा देख के (कि संसार में सब यही चाहते हैं कि वर रूपवान हो) तथा शोभा दिखाने का मौका जान कर शिव जी सैकड़ों हजार कामदेव से सुन्दर हो गये ॥ १२४ ॥

नील निचोल छाल भइ, फनि मनिभूषन।
रोम रोम पर उदित रूपमय पूषन ॥ १२५ ॥

शिव जी के शरीर पर गजचर्म सुन्दर नीला वस्त्र हो गया और सर्प सुन्दर मणियों के गहने हो गये। उनके शरीर के प्रत्येक रोमों पर शोभामय चन्द्रमा उदय हो गया ॥१२५॥

गन भये मंगल बेष मदन-मनमोहन।
सुनत चले हिय हरषि नारिनर जोहन ॥ १२६ ॥

शिव जी के गण मंगल वेश युत हो गये, जिनके रूप को देख कर कामदेव का मन भी मोहित हो गया। यह सुन कर स्त्री पुरुष मन में प्रसन्न होते हुए शिव जी को देखने चले ॥ १२६ ॥

संभु सरद राकेस, नखतगन सुरगन।
जनु चकोर चहुँ ओर बिराजहिं पुरजन ॥ १२७ ॥

शिव जी शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान हो गये तथा देवता गण नक्षत्र के समान और पुरवासियों की ऐसी शोभा हुई मानों चन्द्रमा को घेर कर चकोर शोभायमान हों ॥ १२७ ॥

गिरिवर पठये बोलि लगन बेरा भई।
मंगल अरघ पाँवड़े देत चले लई ॥ १२८ ॥

हिमवान ने लग्न का समय देख कर विवाह के लिए शिव जी को बुला भेजा और मंगल अर्घ्य तथा पाँवड़े देते हुए ले चले ॥ १२८ ॥

होहिं सुमंगल सगुन, सुमन बरषहिं सुर।
गहगहे गान निसान मोद मंगल पुर ॥ १२९ ॥

शुभ मांगलिक सगुन हो रहे हैं, देवता पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। नगर में आनन्द मंगल तथा गान बाजे का गहगहा शब्द हो रहा है ॥ १२९ ॥

पहिलिहिं पँवरि सुसामध भा सुखदायक।
इत बिधि उत हिमवान सरिस सब लायक ॥ १३० ॥

पहले ही सुन्दर सुखदायक समधौरा हुआ। इधर शिव जी की तरफ समधी ब्रह्मा जी और उधर पार्वती जी की तरफ सब योग्य हिमवान समधी हैं ॥ १३० ॥

मनी चामीकर चारु थार सजि आरति।
रति सिहाहिं लखि रूप, गान सुनि भारति ॥ १३१ ॥

मणि, तथा सोने की सुन्दर थाल में आरती सजा कर (स्त्रियाँ शिव जी को परिछने चलीं)। उन स्त्रियों का रूप देख कर रति और गान सुन कर सरस्वती ईर्ष्या करती हैं ॥ १३१ ॥

भरी भाग अनुराग पुलकतनु मुदमन।
मदनमत्त गजगवनि चलिं वर परिछन ॥ १३२ ॥

प्रेम से पुलकित शरीर तथा प्रसन्न मन काममत्त, तथा हाथी के समान मस्त चाल चलने वाली सौभाग्यवती स्त्रियाँ परिछने चलीं ॥ १३२ ॥

वर बिलोकि बिधु गौर सुअंग उजागर।
करति आरती सासु मगन सुखसागर ॥ १३३ ॥

चन्द्रमा के समान गौर तथा दीप्तिमान अङ्ग वाले वर को देख सुखसागर में मग्न हो सासु आरती करती हैं ॥ १३३ ॥

सुखसिंधु मगन उतारि आरति करि निछावरि निरखि कै।
मगु अरघ बसन प्रसून भरि लेइ चली मंडप हरषि कै॥

हिमवान दीन्हेउ उचित आसन सकल सुर सनमानि कै।
तेहि समय साज समाज सब राखे सुमंडपु आनि कै॥ १३४ ॥

वर को देख कर मैना सुखसागर में मग्न हो गयीं। उन्होंने आरती उतार कर निछावर किया। मार्ग में वस्त्र तथा पुष्प बिछा कर प्रसन्न होते हुए वर को मण्डप में ले गयीं। हिमवान ने आदर सहित सब देवताओं को यथायोग्य आसन दिया। उसी समय विवाह का सब सामान एकत्रित कर मण्डप में रखा गया ॥ १३४ ॥

अरघ देइ मनिआसन वर बैठायउ।
पूजि कीन्ह मधुपर्क अमी अँचवायउ ॥ १३५ ॥

हिमवान ने अर्घ्य देकर मणि जटित आसन पर वर को बैठाया। पूजा करके मधुपर्क दे अमृत से आचमन कराया ॥ १३५ ॥

सपत ऋषिन्ह बिधि कहेउ, बिलंब न लाइय।
लगन बेर भइ बेगि बिधान बनाइय ॥ १३६ ॥

ब्रह्मा ने सप्तर्षियों से कहा—देर न कीजिये। लग्न में देर हो गयी। शीघ्र विवाह का विधान ठीक कीजिये ॥ १३६ ॥

थापि अनल हरबरहि बसन पहिरायउ।
आनहु दुलहिनि बेगि समउ अब आयउ ॥ १३७ ॥

सप्तर्षियों ने अग्नि की स्थापन कर दूलह शिव जी को नवीन वस्त्र पहराया और कहा कि दुलहिन को शीघ्र लाओ, विवाह का समय आ गया ॥ १३७ ॥

सखी सुआसिनि संग गौरि सुठि सोहति ।
प्रगट रूप मय मूरति जनु जग मोहति ॥ १३८ ॥

सौभाग्यवती स्त्रियों के सङ्ग में सुन्दरी पार्वती शोभायमान हो रही हैं मानों रूप युक्त मूर्ति प्रकट हो कर संसार को मोह रही है ॥ १३८ ॥

भूषन बसन समय सम सोभा सो भली ।
सुखमा बेलि नवल जनु रूपफलनि फली ॥ १३९ ॥

समयानुसार वस्त्र तथा गहनों की शोभा ऐसी भली लग रही है मानो सुषमा रूपी नवीन लता में रूप का फल फला हो ॥ १३९ ॥

कहहु काहि पटतरिय गौरि गुनरूपहिं ।
सिंधु कहिय केहि भाँति सरिस सर कूपहिं ॥ १४० ॥

कहो तो पार्वती जी के रूप और गुण की उपमा किस से दूँ ? क्या समुद्र को तलाव या कुएँ के समान कहा जा सकता है, अर्थात् पार्वती जी का रूप और गुण अनुपमेय है ॥ १४० ॥

आवत उमहिं बिलोकि सीस सुर नावहिं ।
भये कृतारथ जनम जानि सुख पावहिं ॥ १४१ ॥

पार्वती जी को आते देख कर देवताओं ने प्रणाम किया तथा उन्हें देख कर अपना जन्म सुफल जान कर वे सुखी हुए ॥ १४१ ॥

बिप्र वेद धुनि करहिं सुभासिष कहि कहि ।
गान निसान सुमन झरि अवसर लहि लहि ॥ १४२ ॥

शुभ आशीर्वाद देकर ब्राह्मण वेद ध्वनि करते हैं । समय समय पर गाना, बजाना तथा पुष्प वृष्टि होती है ॥ १४२ ॥

वर दुलहिनिहि बिलोकि सकल मन रहसहिं ।
साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहँसहिं ॥ १४३ ॥

वर दुलहिन को देख कर सभी प्रसन्न होते हैं । शाखोच्चार के समय देवता तथा मुनि सब मुसक्याते हैं । मुसक्याते इसलिए हैं देखें शिव जी अपने बाप दादा का क्या नाम बताते हैं ॥ १४३ ॥

लोक-वेद विधि कीन्ह लीन्ह जल कुस कर ।
कन्यादान संकलप कीन्ह धरनिधर ॥ १४४ ॥

हिमवान ने लोक तथा वेद विधि करके हाथ में जल और कुश लेकर कन्यादान संकल्प किया ॥ १४४ ॥

पूजे कुलगुरु देव, कलसु मिल सुभ धरी ।
लावा होम बिधान बहुरि भाँवरि परी ॥ १४५ ॥

हिमवान ने कुलगुरु तथा देवताओं की पूजा की । कलसा तथा सील की शुभ स्थापन किया । लावामिलौनी तथा होम के विधान पूरा हुआ, फिर भाँवर पड़ी ॥ १४५ ॥

बंदन बंदि, ग्रंथिबिधि करि धुव देखेउ ।
भा बिवाह सब कहेउ जनम फल पेखेउ ॥ १४६ ॥

सिंदुर भर कर गंठ बंधन हुआ तथा ध्रुव तारे* को देखा । सब ने कहा कि विवाह हो गया, जन्म फल देख लिया ॥ १४६ ॥

पेखेउ जनम फल भा बियाह, उछाह उमगहिं दस दिसा ।
नीसान गान प्रसून झरि तुलसी सुहावनि सो निसा ॥
दाइज बसन मनि धेनु धनु हय गय सुसेवक सेवकी ।
दीन्ही मुदित गिरिराज गिरिजहिं पियारी पेव की ॥ १४७ ॥

विवाह हुआ, जन्म फल देख लिया, दसों दिशाओं में उछाह छा गया । गाने बजाने तथा पुष्प वृष्टि होने से वह रात बड़ी सुहावनी हो गयी । दायज में, वस्त्र, मणि, गाय, धन, हाथी, घोड़े, दास, दासी जो पार्वती को प्यारी थीं—हिमवान ने दी ॥ १४७ ॥

बहुरि बराती मुदित चले जनवासहिं ।
दूलह दुलहिनि गे तब हास-अवासहिं ॥ १४८ ॥

इसके बाद वराती जनवासे को चले और दूलह दूलहिन कोहवर में गये ॥ १४८ ॥

रोकि द्वार मैना तब कौतुक कीन्हेउ ।
करि लहकौरि गौरि हर बड़ सुख दीन्हेउ ॥ १४९ ॥

* विवाह की एक रीति जिसमें वर वधु से ध्रुव तारा देखने को कहता है । इससे विश्वास किया जाता है कि ऐसा करने से वरवधू का प्रेम अटल रहता है ।

कोहबर का द्वार रोक कर मैना ने कौतुक किया। लहकौरि करके पार्वती शिव ने सबको बड़ा सुख दिया ॥ १४९ ॥

जुवा खेलावत गारि देहिं गिरिनारिहिं।
अपनी ओर निहारि प्रमोद पुरारिहिं ॥ १५० ॥

वर दुलहिन को जुवा खेलाते समय स्त्रियाँ मैना को गाली गाती हैं, अपनी ओर देख कर (कि मेरी तो माता है ही नहीं गाली किसको पड़ेगी) शिव जी प्रसन्न होते हैं ॥१५०॥

सखी सुवासिनि, सासु पाउ सुख सब विधि।
जनवासहि बर चलेउ सकल मंगलनिधि ॥ १५१ ॥

सौभाग्यवति सखियाँ, सास सब प्रकार सुख पा गये। सब मंगलों के खानि दुलह शिव जी जनवासे में गये ॥ १५१ ॥

भइ जेवनार बहोरि बुलाइ सकल सुर।
बैठाये गिरिराज धरम-धरनी धुर ॥ १५२ ॥

पृथ्वी को सम्हालने वाले हिमवान की पंगत बैठायी। पुनः सब देवता को बुला कर भोजन करने को बैठाया ॥ १५२ ॥

परसन लगे सुवारु, विबुध जन जेवहिं।
देहिं गारि बर नारि मोद मन भेवहिं ॥ १५३ ॥

रसोइये परसने लगे तथा देवता लोग भोजन करने लगे। सुन्दर स्त्रियाँ गाली गाती हैं। जिसे सुन देवता लोग आनन्द मग्न होते हैं ॥ १५३ ॥

करहिं सुमंगलगान सुघर सहनाइन्ह।
जेइँ चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह ॥ १५४ ॥

सुन्दर सहनाई बजती है तथा सुन्दर गान हो रहे हैं, विष्णु ब्रह्मा जी देवता सहित जें कर जनवासे चले ॥ १५४ ॥

भूधर भोर विदा करि साज सजायउ।
चले देव सजि जान निसान बजायउ ॥ १५५ ॥

हिमवान ने प्रातःकाल विदायी की तैयारी की। देवता लोग विमान सजा कर बाजे बजा कर चले ॥ १५५ ॥

सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनि।
कीन्हि बड़ाइ विनय सनेह-सुहावनि ॥ १५६ ॥

हिमवान ने सब देवता को आदर सहित पहिरावनी दी। प्रेम सहित सब का आदर सम्मान किया ॥ १५६ ॥

गहि सिवपद कह सासु बिनय मृदु मानबि।
गौरि-सजीवनि मूरि मोरि जिय जानबि ॥ १५७ ॥

मैना शिव जी का चरण पकड़ कर कहती है, मेरे नम्र विनय को मानियेगा। मेरे जीवन की पार्वती सजीवन मूरी है ॥ १५७ ॥

भेंटि बिदा करि बहुरि भेंटि पहुँचावहि।
हुँकरि हुँकरि सुलवाइ धेनु जनु धावहि ॥ १५८ ॥

मैना पार्वती को भेंट विदा कर फिर भेंटती हैं और विदा करती हैं मानो हाल की व्यायी गाय अपने बछड़े के पास हुँकर हुँकर कर दौड़ती हो ॥ १५८ ॥

उमा मातु मुख निरखि नयन जल मोचहिं।
नारि जनम जग जाय सखी कहि सोचहिं ॥ १५९ ॥

पार्वती जी माता का मुख देख कर नेत्रों से आँसू बहाती हैं और सखी से कहती हैं कि स्त्री जन्म संसार में व्यर्थ है और दुःखी होती हैं ॥ १५९ ॥

भेंटि उमहिं गिरिराज सहित सुत परिजन।
बहु समुझाइ बुझाइ फिरे बिलखित मन ॥ १६० ॥

हिमवान पुत्र तथा कुटुम्बियों सहित पार्वती से मिल तथा उन्हें बहुत समझा बुझा कर दुःखी मन लौट आये ॥ १६० ॥

संकर गौरि समेत गये कैलासहि।
नाइ नाइ सिर देव चले निज बासहिं ॥ १६१ ॥

शिव जी पार्वती सहित कैलास गये और देवता उन्हें सिर नवा कर अपने अपने स्थान को गये ॥ १६१ ॥

उमा महेस बियाह-उछाह भुवन भरे।
सब के सकल मनोरथ बिधि पूरन करे ॥ १६२ ॥

शिव पार्वती जी के ब्याह का उछाह संसार में भर गया, सभी की सब मनकामनाएँ ब्रह्मा पूर्ण करे ॥ १६२ ॥

प्रेमपाट पटडोरि, गौरि-हर-गुन मनि।
मंगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि ॥ १६३ ॥

कवि की बुद्धि रूपी मृगलोचनि स्त्री ने प्रेम रूपी रेशम की डोरी में शिव पार्वती के गुण रूपी मणि से यह मङ्गल हार की रचना की ॥ १६३ ॥

मृगनयनि बिधु-बदनि रचेउ मनि मंजु मंगल हार सो।
उर धरहु जुवति जन बिलोकि तिलोकि सोभा-सार सो ॥
कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइ हैं।
तुलसी उमा-संकर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइ हैं ॥ १६४ ॥

मृगनयनी, चन्द्रवदनी ने यह सुन्दर मणि के हार की रचना की। इसे तीनों लोक की शोभा का सार जान कर स्त्री पुरुष हृदय में धारण करें। मङ्गल काज तथा विवाहोत्सवादि में जो इसे गावेंगे, तुलसीदास जी कहते हैं कि, शिव पार्वती जी की प्रसन्नता से वे मनचाहा आनन्द प्राप्त करेंगे ॥ १६४ ॥

॥ शुभमस्तु ॥

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.

गोस्वामी तुलसीदास कृत पुस्तकें

१—	तुलसीदासकृत	रामायण छोटा गुटका	॥)
२—	,,	,, गुटका	१)
३—	,,	,, सटीक गुटका	३)
४—	,,	,, सचित्र बड़े अक्षर में मूल ...	३)
५—	,,	,, सचित्र और सटीक बड़े अक्षर में ...	६)
६—	,,	विनय पत्रिका सटीक और सचित्र ..	२)
७—	,,	गीतावली सटीक	२)
८—	,,	कवितावली सटीक	२)
९—	,,	दोहावली सटीक	१)
१०—	,,	वैराग्य-संदीपिनी ...	≡)
११—	,,	रामलला-नहछू	=)
१२—	,,	बरवै-रामायण	≡)
१३—	,,	जानकी-मंगल	।=)
१४—	,,	तुलसी-रत्नावली	१)

छप रही हैं

१—रामाज्ञा प्रश्न　　२—कृष्णगीतावली

मिलने का पता—

रामनरायन लाल

पब्लिशर और बुकसेलर,

इलाहाबाद